ISSN 2231-1629
Knowledge Resonance

IMPACT FACTOR 8.072
January - June 2021- Vol. 10 No. 1

'कोणार्क' : कला के माध्यम से मानवता का उत्कर्ष

डॉ. प्रवीणकुमार न. चौगुले
सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग,
श्रीमती कस्तुरबाई वालचंद महाविद्यालय, सांगली

★★★

शोध–सारांश – हिंदी नाट्य–साहित्य के श्रेष्ठतम हस्ताक्षर के रूप में नाटककार जगदीशचंद्र माथुर का नाम लिया जाता है। जगदीशचंद्र माथुर को प्रसाद और परवर्ती नाटककारों के बीच की कड़ी कहा जाता रहा है। उनके 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा', 'दशरथनंदन' आदि नाटकों में इतिहास और समकालीन बोध का सुंदर मिलाफ हुआ है। 'कोणार्क' माथुर जी की प्रथम नाट्य–कृति है और अपने इस पहले नाटक में ही उन्होंने हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी है। कथ्य, चरित्र–चित्रण, संवाद, शिल्प और रंग–तत्व की दृष्टि से 'कोणार्क' अपने ढ़ंग की एक नई कृति है। इतिहास के अंषतः तथ्य को लेकर युगीन चेतना एवं यथार्थ की भावभूमि को नाटककार ने बखूबी चित्रित किया है। धर्मपद के माध्यम से मानवतावादी स्वर में नए मानव–मूल्यों की यहाँ प्रतिष्ठा हुई है। नाटक में उसके माध्यम से जनशक्ति एवं राजशक्ति का संघर्ष उभरकर सामने आता है। नाटक पर युग–बोध का अमिट प्रभाव है। जीवन का असल संघर्ष ही नाटक की वास्तविक सत्ता को सिद्ध करता है। अतः कला के माध्यम से मानवता के उत्कर्ष को प्रस्तुत नाटक में नाटककार उजागर करते हैं।

बीज शब्द – नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, 'कोणार्क' नाटक, युग–चेतना, नई दिशा, कला के माध्यम से मानवता का उत्कर्श।

प्रस्तावना – स्वातंत्र्योत्तर हिंदी नाट्य–साहित्य को नई दिशा में विकसित करनेवाले नाटककारों में जगदीशचंद्र माथुर का स्थान अग्रणी है। वे एक प्रयोगधर्मी नाटककार रहे हैं। सुमित्रानंदन पंत से लेकर रामधारी सिंह 'दिनकर' और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' जैसे दिग्गज साहित्यकारों के साथ उन्होंने हिंदी के माध्यम से सांस्कृतिक पुनर्जागरण का सूचना संचार तंत्र विकसित और स्थापित किया था। उनकी व्यक्तिवादी चेतना युगबोध से जुड़ी है किंतु आत्माभिव्यक्ति उनका मूल स्वर है। शिल्प एवं कथ्य के क्षेत्र में वे अपने पूर्ववर्तियों की अपेक्षा अधिक जागरूक रहे हैं। साथ ही अपने युग के ज्वलंत प्रश्न उठाने में भी वे सक्रिय रहे। अपने नाटकों में इतिहास का आधार लेकर समकालीन भावबोध को प्रस्तुत करने का प्रयास उन्होंने किया है। 'कोणार्क', 'शारदीया', 'पहला राजा', 'दशरथनंदन' आदि नाटकों में समकालीन यथार्थ का अपूर्व चित्रण किया है। इनकी नाटकों में इतिहास और समकालीन बोध का सुंदर मिलाफ हुआ है। 'कोणार्क' माथुर जी की प्रथम नाट्य–कृति है और उनकी सर्वश्रेष्ठ नाट्य–रचना भी मानी जाती है। अपने पहले नाटक में ही उन्होंने हिंदी नाटक को एक नई दिशा दी। विभिन्न प्रमाणों के आधार पर 'कोणार्क' को हिंदी का पहला नया नाटक स्वीकार किया गया है। सन 1950 और 1955 के बीच लिखित हिंदी नाटकों में सर्वश्रेष्ठ घोषित होने का गौरव 'कोणार्क' को प्राप्त हुआ है।[1] 'कोणार्क' में माथुर जी ने छायावाद एवं प्रगतिवाद के बीच मोहभंग की स्थिति में युगीन चेतना एवं नई दिशा की तलाश की। वस्तुतः 'कोणार्क' की रचना–प्रक्रिया और भावबोध स्वच्छन्दतावाद और यथार्थवाद के विलक्षण योग का परिचायक है। 'कोणार्क' की अवधारणा में बुद्धि और हृदय का अपूर्व योग है। गोविंद चातक की दृष्टि में, ''हिंदी नाट्य–साहित्य के विकास–क्रम में भारतेंदु हरिश्चंद्र और जयशंकर प्रसाद की नाट्य–कृतियों के पश्चात् 'कोणार्क' ही ऐसा पहला प्रयोग है, जो पुरातनता एवं नूतनता का, कथ्य एवं शिल्प दोनों ही दृष्टियों से, समुचित आकलन करता है। भारतेंदु ने हिंदी नाटक को नए युगबोध से जोड़ने और प्रसाद ने उसे एक विशिष्ट मानवीय धरातल देने में जो योग दिया है, उसको एक नया मोड़ देने का श्रेय जगदीशचंद्र माथुर को हैकृयह अत्युक्ति न होगी यदि हम कहें कि यहाँ से आधुनिक नाट्यलेखन में समकालीनता का नया युगबोध अज्ञात रूप से प्रस्फुटित होने लगता है। वैसे यह भी कहा जा सकता है कि आधुनिक नाट्य आंदोलन किसी न किसी रूप में स्वच्छंदतावाद से उभरे हैं और इस दृष्टि से आधुनिकता के प्रथम उदय में प्रसाद के नाटकों का महत्वपूर्ण योग है, किंतु यह भी एक तथ्य है कि 'कोणार्क' वह पहला नाट्यप्रयोग है जो परंपरा को नए स्तर से जोड़ता है।'' जयशंकर प्रसाद के बाद नाटक लेखन के क्षेत्र में लक्ष्मी नारायण मिश्र एक बड़ा नाम हैं पर इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्रसाद की परंपरा से अलग हटकर प्रयोगशील नाटक लिखने की पहल जगदीशचंद्र माथुर ने अपने अप्रतिम नाटक 'कोणार्क' से की। सुमित्रानंदन पंत नाटक की भूमिका में लिखते हैं, ''कोणार्क' उनकी अत्यंत सफल कृति है। हिंदी में नाट्यकला की ऐसी सर्वांगपूर्ण सृष्टि मुझे अन्यत्र देखने को नहीं मिली। इसमें प्राचीन–नवीन नाट्यकला का अत्यंत मनोरम सामंजस्य है।'' माथुर जी की प्रयोगशीलता का सफल प्रमाण यही है कि उनके सम्पूर्ण नाटक 'कोणार्क' में एक भी नारी पात्र नहीं है, लेकिन फिर भी वह बेहद सफलतापूर्वक मंचित होकर दर्शकों का चहेता मंच नाटक बना

रहा है। सन 1951 में लिखे जाने के बावजूद आज भी वह कई संदर्भों में चर्चा का केंद्र बना रहता है।

कला के माध्यम से मानवता का उत्कर्ष – नाटक की कथावस्तु में इतिहास का आधार काफी कम है, बाकी पूरे नाटक में नाटककार की कल्पना ही काम करती है। नाटक की कथावस्तु का आधार भुवनेश्वर में स्थित 'कोणार्क' का जीर्ण–शीर्ण मंदिर है, जो उत्कल प्रदेश के गंगवर्षीय राजा नरसिंह देव के राज्यकाल (1238–1264) में बना था। 'कोणार्क' सूर्य देवता का मंदिर था, जिसके दुर्ग–प्राचीर के बारह चक्र संभवतः बारह महीनों के, सात घोड़े सात दिवसों के और मंदिर के भीतर निरालंब लटकती हुई मूर्ति आकाश में चमकते निराधार सूर्य के प्रतीक हैं। सूरज पूर्व से उगता है, इसलिए भारत की भूमि के सबसे पूर्वी तट पर यह मंदिर बना जो भारत में पूर्व से उगते सूरज का प्रतीक है। सागर–तट पर बना मंदिर संभवतः सागर के बीच से उगते हुए सूरज की कल्पना को आधार देता है। संभवतः इन्हीं कारणों से ठीक सागर के तट पर यह सूर्य–मंदिर बना। विध्वंस के कारण अब यह मंदिर जीर्ण–शीर्ण अवस्था में पाया जाता है। यह मंदिर, भारत की सबसे प्रसिद्ध स्थलों में से एक है। इसे युनेस्को द्वारा सन 1984 में विश्व धरोहर स्थल घोशित किया गया है। कलिंग शैली में निर्मित यह मंदिर सूर्य के रथ के रूप में निर्मित है। नाटक का सृजन उड़ीसा में स्थित इस 'कोणार्क' के प्रसिद्ध देवालय के निर्माण और विध्वंस की कथा को लेकर हुआ है। उड़ीसा के मंदिरों की परंपरा में यह भवन अंतिम होते हुए भी भग्नावस्था में पड़ा है। इस मंदिर के खंडित होने के संबंध में उड़ीसा में एक किंवदंती प्रचलित है, जिसे नाटककार ने अंषतः ही अपने नाटक का आधार बनाया है। नाटक तीन अंकों में विभाजित है। प्रथम अंक में महाशिल्पी विशु के तत्वावधान में कोणार्क में सूर्यदेव का एक विशाल और भव्य मंदिर बनवाना आरंभ होता है। आचार्य विशु भी उसे स्थापत्य कला के एक अद्भुत आदर्श रूप में बनाने जुट जाते हैं। तभी राजा नरसिंह देव यवनों को पराजित करने हेतु बंगदेश चले जाते हैं तथा अपना राज्यभार मंत्री चालुक्य को सौंप जाते हैं। 'कोणार्क' का निर्माण बारह सौ शिल्पियों को लेकर लगातार बारह वर्षों तक अविराम चलता रहता है। किंतु इतने अथक परिश्रम के बावजूद महाशिल्पी विशु मंदिर पर शिखर की स्थापना करने में असमर्थता महसूस करता है। तभी शिल्पी धर्मपद की सलाह से विशु शिखर पर कलश स्थापित करने में सफल होता है। 15 दिन पश्चात् महाराज नरसिंह देव यवनों को पराजित करने के बाद 'कोणार्क' के कलात्मक सौदर्य को देखने, 'कोणार्क' में मूर्ति प्रतिष्ठापना के अवसर पर पधारते हैं, तो उन्हें मंत्री चालुक्य के विद्रोह की सूचना मिलती है। शिल्पी धर्मपद विशु की ही संतान है इस बात का पता विशु को चल जाता है। अब इस संकट की स्थिति में धर्मपद के नेतृत्व में सारी प्रजा राजा की रक्षा के लिए जुट जाती है। चालुक्य सेना लेकर मंदिर में गुप्त मार्ग से घुस जाता है और वहाँ धर्मपद और सेना में हुए संघर्ष में धर्मपद मारा जाता है। धर्मपद के मृत्यु की खबर विशु को मिलने के पश्चात् वह क्रोधवश कुदाला लेकर अपनी अनुपम कलाकृति 'कोणार्क' मंदिर की दीवारें तथा शिखर गिरा देता है, जिसके नीचे दबकर चालुक्य और उसके साथियों का अंत हो जाता है। आज भी वह खंडहर मंदिर कला की ज्योति का अटूट विश्वास जगाए सो रहा है और राजा नरसिंह देव तथा महान शिल्पी विशु के नाम को अपनी कला की चमक से प्रज्ज्वलित कर रहा है।

प्रस्तुत नाटक में माथुर जी ने इतिहास के तथ्य का आधार मात्र लेकर मनुष्य के संघर्ष को प्रकट किया है। इसीलिए वे खुद लिखते हैं, ''प्रणय की अठखेलियों और भाग्य के थपेड़ों के आधार पर 'कोणार्क' के खंडहरों का सहारा ले एक रोचक कथापट प्रस्तुत कर देने से मुझे संतोष नहीं हुआ। मुझे तो लगा जैसे कलाकार युग–युग से मौन–पुरूष जो सौंदर्य–सृजन के सम्मोहन में अपने को भूल जाता है 'कोणार्क' के खंडन के क्षण में फूट निकला हो। चिरंतन मौन ही जिसका अभिशाप है उस पौरूष को मैंने वाणी देने की धृष्टता की है।'' यहाँ धर्मपद पौरूश का प्रतीक बन जाता है और विशु का पथ–प्रदर्शक या प्रेरक भी। विशु और धर्मपद एक–दूसरे के पूरक हैं और अंततः दोनों एक हो जाते हैं। धर्मपद के विचारों में प्रगतिशील चिंतन की झलक मिलती है। वह पीड़ित जन का प्रतिनिधित्व करता है। नाटक में उसके माध्यम से जनशक्ति एवं राजशक्ति का संघर्ष उभरकर सामने आता है। 'कोणार्क' का दूसरा और तीसरा अंक समकालीनता और युगीन चेतना का भी सही संकेत देता है। द्वितीय अंक नरसिंह देव की गुण–ग्राहकता, विशु की निस्वत्व महानता और धर्मपद की निर्भीक समाजिकता का भान कराता है। अंक का पूर्वार्द्ध चारित्र्य की रेखाओं और रंगों से भरा गया है, किंतु बाद में राजराज चालुक्य द्वारा आक्रमण का समाचार मोहभंग और जागरण के आवेग से ओत–प्रोत है। जब नरसिंह देव को अमात्य के शड्यंत्र का भान नहीं होता, तब धर्मपद उसका मोहभंग कर देता है और वस्तुस्थिति को निर्भीकता से उजागर करते हुए मानवतावादी स्वर में नए मानव की प्रतिष्ठा करता है : ''देव, झुरमुट की ओट में चहकने वाले पक्षी का स्वर सर्वथा हर्शगान ही नहीं होता। आपको क्या मालूम कि उस जय–जयकार के पीछे हाहाकार चुपचाप सिसक रहा था।'' और जब अमात्य का भेद खुलता है, तब धर्मपद प्रतिकार के लिए उसके विरोध में शिल्पियों को लेकर खड़ा हो जाता है। विषु व्यक्तिवादी है किंतु धर्मपद बार–बार जनशक्ति के महत्व को अलापता है। नाटक पर युग–बोध का अमिट प्रभाव है। असल में जीवन का वास्तविक सगीत संघर्श में ही फलीभूत होता है। वही नाटक की वास्तविक सत्ता को सिद्ध करता है।

साथ ही पिता–पुत्र विशु एवं धर्मपद के रूप में नई एवं पुरानी पीढ़ी के संघर्ष को दिखाते हुए कलाकार के मानसिक द्वंद्व का अंकन करते हुए कला साधना के दो पक्षों को भी नाटककार ने दिखाया है। सूर्यदेव और कुन्ती का प्रसंग अप्रत्यक्ष रूप से विशु और सारिका के प्रेम–संबंध और विडम्बना को लिए उभारता है। विशु की निष्ठुरता,

कायरता, अवैध संतान की प्राप्ति सभी प्रसंगों में विशु और सूर्य, कुन्ती और सारिका एक हो जाते हैं। कला को जिनेवाले एक महान शिल्पी के जीवन की यह कायरता नाटकीय विडम्बना है। स्वयं अपने व्यावहारिक और निजी जीवन की कला में जो व्यक्ति पराजित हुआ, वही महान शिल्पी बना। वह अपनी विडम्बना सौम्य से बयान करता है, ''भव्य मंदिरों को बनाने वाले मेरे ये हाथ सारिका और उसकी संतान के लिए एक झोंपड़ी न बना सके।'' यहाँ एक महान कलासाधक एवं उसके जीवन के कटु यथार्थ के पक्ष को नाटककार ने उजागर किया है। एक महान कलाकार के जीवन की विवशता को बयान करते हुए फिर असल में कला के उद्देश्य पक्ष की दृष्टि से नाटक गहन चिंतन की माँग करता है। विशु और धर्मपद दोनों की दृष्टि में कला के मायने अलग–अलग हैं। विशु की एकांत कला साधना और व्यक्तिवादी सौंदर्य चेतना का धर्मपद विरोध करता है। महाशिल्पी विशु जिस व्यक्तिवादी रोमानी कला का समर्थक है, ध र्मपद उसको एक प्रकार से चुनौती देता है और उसका संबंध बौद्धि ाकता एवं यथार्थता से जोड़ने का प्रयास करता है। इस संदर्भ में वह विशु से कहता है, ''जीवन के आदि और उत्कर्ष के बीच एक और सीढ़ी है – जीवन का पुरूशार्थ, अपराध क्षमा हो आचार्य, आपकी कला उस पुरूशार्थ को भूल गई है। जब मैं इन मूर्तियों में बँधे रसिक जोड़ों को देखता हूँ, तो मुझे याद आती है पसीने में नहाते हुए किसान की, कोसों तक धारा के विरूद्ध नौका खेने वाले मल्लाह की, दिन–दिन भर कुल्हाड़ी लेकर खटने वाले लकड़हारे की ! कृ.इनके बिना जीवन अधूरा है, आचार्य !'' धर्मपद कला के तहत किसी विलास वस्तु से परे जीवन के यथार्थ का पक्षधर है। यहाँ कला की दृष्टि से विशु एवं धर्मपद में संघर्ष प्रस्फुटित होता है। नाटक का तृतीय अंक कथावस्तु को चरम सार्थकता प्रदान करता है। विशु को इस बात का पता चल जाता है कि धर्मपद उसका अपना पुत्र है और युद्ध के दौरान जब वह मरणासन्न अवस्था में होता है, तब विशु के मन में उसके प्रति एक विलक्षण ममता और स्वयं अपने प्रति एक अव्यक्त अपराध–भावना पैदा होती है। वह धर्मपद को पुनः युद्ध में जाने के लिए रोकता भी है, किंतु जब शत्रु उसे मार ड़ालता है तो उसे अपनी कला और जीवन की अर्थहीनता का आभास होने लगता है। इसी स्थिति में वह चुम्बक तोड़कर मंदिर को तोड़ ड़ालता है। मंदिर के निर्माण में विषु की प्रेयसी की प्रेरणा थी और नाश में पुत्र के प्रतिशोध की! वस्तुतः, 'स्व' को केंद्र में रखकर 'कोणार्क' में कला और पौरूष की आंतरिक प्रेरणाओं का सहज उन्मेष दिखाई देता है। संक्षेप में रमेश गौतम जी के मत के अनुसार कहा जा सकता है कि, ''ऐतिहासिकता के सहारे कलाकार की शाश्वत कला चेतना के द्वंद्व तथा युग संदर्भ की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को उठाते हुए 'कोणार्क' समकालीन जीवंत भावस्थिति को अन्वेशण करता है। कलाकार के अंतःसंघर्ष में नाटककार ने आज की जनशक्ति का प्रतीकात्मक चित्रण किया है। भावात्मक मानवीय संवेदनाओं के मध्य आधुनिकता की व्यंजना देने वाला यह पहला ऐतिहासिक नाटक है।''

उपसंहार – निष्कर्शतः 'कोणार्क' नाटक प्रसाद युग से प्रवाहित होती हुई धारा को एक नया मोड़ देने का प्रयास करता है। समसामयिक भावबोध और रंगधर्मिता की दृष्टि से एक नए प्रयोग के रूप में 'कोणार्क' की रचना हुई है। अपनी युगीन चेतना एवं एक नई दिषा को तलाशता यह नाटक सार्थक बन पड़ा है। प्रस्तुत नाटक में व्यक्ति एवं समष्टि के पक्ष में कला के द्वंद्व को उजागर किया गया है। व्यक्तिवादी कला एवं बौद्धिकता तथा यथार्थता के द्वंद्व के प्रश्न को नाटककार ने प्रकाशित किया है। यहाँ कला के माध्यम से मानवता का उत्कर्ष नाटककार का उद्देश्य है। धर्मपद के माध्यम से मानवतावादी स्वर में नए मानव–मूल्यों की यहाँ प्रतिष्ठा हुई है। नाटक में उसके माध्यम से जनशक्ति एवं राजशक्ति का संघर्ष उभरकर सामने आता है। माथुर जी ने अपने नाटक के माध्यम से मानवीय मूल्यों के संदर्भ में युगबोध को एक नितांत नए स्तर से जोड़ा है। विशु व्यक्तिवादी है किंतु धर्मपद बार–बार जनशक्ति के महत्व को बयान करता है। अतः कला के माध्यम से मानवता के उत्कर्श को प्रस्तुत नाटक बखूबी अभिव्यक्त करता है।

संदर्भ :

1. *जगदीशचंद्र माथुर की नाट्यसृष्ट – डॉ. नरनारायण राय पृ 29 से उद्धष्त*
2. *नाटककार जगदीषचंद्र माथुर – गोविंद चातक, पृ 29*
3. *कोणार्क – जगदीषचंद्र माथुर, पृ 3*
4. *वही, परिचय, पृ 13*
5. *वही, पृ 49*
6. *वही, पृ 32*
7. *वही, पृ 34*
8. *हिंदी नाटक : इतिहास–दृष्ट और समकालीन–बोध – डॉ. प्रभात शर्मा, पृ 125 से उद्धश्त*